सायण-भाष्य

की

समालोचना।

लेखक

श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

लाहौर

प्रकाशक

मन्त्री०— साहित्य परिषद्

पोस्ट गुरुकुल कांगड़ी, जिला बिजनौर

ला० देवीचन्द मैनेजर के प्रबन्ध से पंजाबी प्रेस

लाहौर में छपा।

प्रथमवार ५०० | सन १९१८ संवत १९७४ | मूल्य -)

* ओ३म् *

* सायण भाष्य समीक्षण *

श्री सायणाचार्य का वैदिक सारस्वत पर धारा प्रवाह भाष्य है। वेद के सब संहिता ग्रंथ तथा ब्राह्मण ग्रंथ इनके भाष्य से अलंकृत हुए हैं। एक विद्वान् पुरुष जितने ग्रंथ पढ नहीं सकता उतने ग्रंथों पर इस विद्वच्छिरोमणि ने विस्तृत और विद्वत्ता-प्रचुर भाष्य किया हुआ है। जिस समय श्री सायणाचार्य विद्यमान थे उस समय इनके समान कोई विद्वान् न था और न उनके पश्चात् वैसा विद्वान हुआ। इनकी विद्या देखकर लोकआश्चर्य चकित होते थे। सब ग्रंथों की उपस्थिति इनको थी। "देहधारी पुस्तकालय" कहना इनके लिये कोई अत्युक्ति नहीं थी। जिस प्रकार अरण्य में अनन्त छोटे मोटे वृक्ष वनस्पति आदि विद्यमान रहते हैं इसी प्रकार श्री सायणाचार्य में सब विद्याएं विद्यमान थीं। मानो विद्या वृक्षों का वह अरण्य था। इसी लिये विद्यारण्य भी उनको कहते थे।

अनेक विद्वानों द्वारा उन्होंने इतना विस्तृत भाष्य लिखवाया होगा ऐसा कोई विद्वान् आज कल कहने लगे हैं। भाष्य की विचित्रता के कारण यह कल्पना प्रथम उद्भूत हुई। परन्तु एक बात यहां ध्यान में रखनी चाहिए कि इतने ग्रंथों के ऐसे

विस्तृत भाष्य में कोई भी ऐसा स्थान नहीं कि जिस में इनके स्वकीय मंतव्य के विरुद्ध कुछ लेख पाया जाता हो। यदि सब भाष्य अनेक पण्डितों द्वारा लिखवाया होता, तो ऐसा होना सर्वथा असंभव था। इनके सब भाष्यों में सिद्धान्तों की एकता है। और वह बताती है कि एकही पुरुष की बुद्धी का यह विस्तार है। लिखने लिखवाने के लिए अवश्य कई पंडित रक्खे ही होंगे परन्तु इस में कोई संदेह नहीं कि, सब भाष्य इनकी एक सूत्री बुद्धि की निगराणी में ही बना है। यदि सर्वत्र इनके निरीक्षण से परीक्षण न हुआ होता तो इतने ग्रंथ विस्तार में सिद्धांत भेद होना कोई असंभव न था। सिद्धांत का ऐक्य ही कर्ता की एकता सिद्ध कर रहा है।

इनके भाष्य में जो भिन्नता पाई जाती है वह यह है कि कई स्थानों पर व्याकरण से शब्द सिद्धी विशेष बताई है। उसके बाद ही ऐसे स्थान आते हैं कि जिन में शब्द सिद्धि का प्रयत्न किया ही नहीं है। तीसरे कई स्थान ऐसे हैं कि जहां स्मृतियों के–गीता आदि ग्रन्थों के–आधार अधिक दिये हैं। परन्तु चौथे ऐसे कई स्थान हैं कि जहां स्मार्त वाक्यों का कोई उल्लेख नहीं। ऐसे प्रकरण के प्रकरण होने से विद्वान् लोकों में यह शक होता है कि शायद यह भाष्य अनेकों द्वारा लिखवाया गया हो। परन्तु ऊपर कही हुई सिद्धान्त की एकता इस भिन्नता का निवारण करती है। और भेद में अभेद प्रस्थापित करती है। मेरे देखने में यह बात आगई है कि, प्रायः प्रारंभ में शब्द

सिद्धी की ओर अधिक ध्यान दिया गया है और वह सहेतुक भी हो सकता है ।/जहां नया प्रकरण प्रारंभ होता है वहां प्रथम व्याकरण पर जोर दिया हुआ दिखाई देता है । जहां यज्ञ पर अर्थ ले जाना होता है वहां ब्राह्मणादि याज्ञिक ग्रन्थों के आधार बहुत आते हैं तथा जहां अध्यात्म की बातें आतीं हैं वहां प्रस्थानत्रयी के वाक्य आते हैं।। यह एक व्यवस्था है न कि कर्ता के भेद से यह बात हुई है ।

\श्री० सायणाचार्य जिस समय में होगये थे उस समय वेदों का उपयोग दर्शपूर्णमासादि होम हवन के लिये ही है ऐसा समझा जाता था । इस पूर्व ग्रह से श्री० सायणाचार्य जैसे विद्वान् की बुद्धि भी कलुषित होने से बची नहीं \ सब ग्रन्थों की उपस्थिति रखने वाले विद्वान पूर्वग्रह से दूषित होकर किस प्रकार प्रमाद करते हैं इसका दर्शन सायण भाष्य में स्थान २ पर होता है । इस बात को बताने के लिये मनुष्य वाचक कई नामों का श्री सायणाचार्य जी ने किस प्रकार खेंचा तानी का अर्थ किया है यह यहां बताया है । देखिए:—

(१) मर्त्य शब्द मरण धर्मा मनुष्य (mortal) ऐसा अर्थ बताता है। परन्तु सायणाचार्य इसका अर्थ देखिए कैसा करते हैं:-

१ मर्त्यं यजमानं अवाः अवसि रक्षसि ॥ ऋ० १ । २७ । ७॥

२ मर्त्यः मनुष्यः यजमानः । १ । ३६ । ४ ॥

३ मर्ताः मरणधर्माणो यजमानाः । १ । ६० । २ ।

४ मर्त यजमानं । १ । १४१ । ६ ।

५ मर्तासो मनुष्याः वयं यजमानाः । १ । १४४ । ५ ॥

६ मर्त्येभ्यो मरणधर्मेभ्यो यजमानादिरूपेभ्यः । १। १४५ । ५ ।

७ मर्तान् मर्त्यान् स्तोतॄन् । ३ । १ । १७ ।

८ मर्त्यानां अग्निहोत्रिणाम । ३ । १ । १८ ।

९ सखायः सोमाज्यादि हविः प्रदानेन उपकारत्वात् मित्राणि मर्तासो मनुष्याः ऋत्विजः ॥ ३ । ९ । १ ।

१० मर्ताः मनुष्याः अध्वर्यु प्रभृतयः । ३ । ९ । ६ ।

११ मर्त्यो मनुष्यो यजमानोवा । ३ । ११ । ७ ।

१२ मर्त्यस्य मनुष्यस्य शत्रोः । ३ । १६ । ६ ।

१३ मर्त्यासः मर्त्याः ऋत्विजः । ३ । २९ । १३ ।

१४ मर्तैः मनुष्यै ऋत्विग्भिः । ५ । ३ । ९ ।

१५ मर्त्यः यजमानः । ५ । ७ । ६ ।

१६ मर्त्येषु स्तोतृषु आत्रेयेषु । ५ । ७ । ९ ।

१७ मर्त्यः मनुष्यः ऋत्विक् । ५ । १७ । १ ॥

१८ मर्तः मरण–धर्मा यजमानः ॥ ६ ॥ २ ॥ ४ ॥

१९ मर्त्येषु मनुष्येषु यजमानेषु ॥ ६ ॥ ४ ॥ २ ॥

मर्त्य शब्द का केवल मनुष्य, मरण धर्मा मनुष्य ऐसा सामान्य अर्थ न करके "**यजमान, स्तुति करने वाला ऋत्विक्, अध्वर्यु आदि ऋत्विक्**" ऐसा अर्थ किया है। ऐसा अर्थ करने से मन्त्रों का सामान्य अर्थ लुप्त होकर

उनका यज्ञ पर विशेष अर्थ हुआ है ॥ कई मन्त्रों में इस प्रकार के अर्थ के कारण निःसन्देह खेंचा तानी हुई है ॥

(२) नर, नृ आदि शब्द "नेता (Leader) मनुष्य, सामान्य मनुष्य" ऐसा अर्थ बताते हैं ॥ परन्तु श्री० सायणाचार्य जी ने इसका भी यज्ञ पर ही अर्थ किया है ॥ देखिये:—

१ नरं पुरुषं यजमानं ॥ १ ॥ ३१ ॥ १५ ॥

२ नृभिः ऋत्विग्लक्षणैर्मनुष्यैः १,६६,३ ॥

३ नृभ्यः यज्ञस्य नेतृभ्यो यजमानेभ्यः । १,६६,४ ॥

४ नृभिः नेतृभिः मरुद्भिः, १,६९,४ ॥

५ नृ-पति नृणां ऋत्विजां पालकं यजमानम्, १,७१,८ ॥

६ नृणां यज्ञस्य नेतृणाम् ॥ १,७८, ४ ॥

७ नरो नेतारो यजमानाः ॥ २ ॥ १ ॥ ९ ॥ ॥

८ नरः कर्मणां नेतारो अध्वर्य्वादयः ॥ ३, ८ ॥ ६ ॥

९ नरः नेतारो ऋत्विजः ॥ ५ ॥ ७ ॥ २ ॥

१० नरः हविषां नेतारः ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

इस प्रकार नर, नृ इन शब्दों का अर्थ "ऋत्विज्, यजमान, अध्वर्यु आदि, हवि-हवन सामग्री-ले जाने वाला" ऐसा करके मन्त्रों के सामान्य अर्थ को नष्ट करके यज्ञ पर अर्थ खेंचकर करने की चेष्टा श्री० सायणाचार्य जी ने की है ॥ नृ शब्द का मूल नेता अर्थ देकर अपना अर्थ पीछे से

दिया है ॥ इससे पता लगता है कि, शब्द के मूल अर्थ से पूर्ण-तया परिचित होने पर भी, पूर्वग्रह से बुद्धि दूषित होने के कारण किस प्रकार अर्थ का अनर्थ किया जा सकता है ।

(३) **जन्तु** शब्द प्राणिवाचक है ॥ "जो जन्मा हुआ है" वह जन्तु है ॥ इसका अर्थ मनुष्य भी हो सकता है ॥ परन्तु श्री० सायणाचार्य क्या करते हैं देखिये:—

१ जन्तवः प्रजासूत्पन्ना यजमानाः ॥ १ ॥ ४५ ॥ ६ ॥

२ जन्तवो जाताः सर्वे ऋत्विजः ॥ १, ७४ ॥ ३ ॥

३ जन्तुभिः ऋत्विग्भिः ॥ ३ ॥ २ ॥ ६ ॥

इस प्रकार जन्तु शब्द का भी अर्थ "यजमान और ऋत्विज" ऐसा किया गया है ॥

(३) **विप्र** शब्द "पण्डित, ब्राह्मण, ज्ञानी," ऐसा अर्थ बताता है । परन्तु सायणाचार्य इसको भी खेंचकर केवल ऋ-त्विजों पर ही घटाते हैं । देखिये:—

१ विप्रेभिः मेधाविभि ऋत्विग्भिः ॥१॥ २७॥६॥ १॥१२७॥२॥

२ विप्राः मेधाविनः ऋत्विजः ॥ १ ॥ १४५ ॥ ८ ॥

३ विप्राः स्तुतीनां प्रेरका जागृवांसः अग्निहोत्रादि कर्मणि अप्रमत्ततया प्रबुद्धाः ॥ ३, १० ॥ ९ ॥

४ विप्रासः मेधाविनो होत्रादयः ॥ ३ ॥ ११ ॥ ६ ॥

यहां विद्वान् ज्ञानी अर्थ बताने वाला "विप्र" शब्द केवल ऋत्विग् अर्थ पर लगाने की चेष्टा श्री० सायणाचार्य करते हैं ।

(४) विट्, विश् शब्द "मनुष्य, जनता, प्रजा" ऐसा अर्थ बताता है। परन्तु सायण भाष्य में उसका भी अर्थ ऋत्विजों में घटाया है। देखिये:—

१ विश्-पतिं विशां प्रजानां होत्रादीनां पालकम् ॥१॥१२॥२॥

२ विशे विशे तत्तद्यजमान-रूप-प्रजानुग्रहार्थम् ॥१॥२७॥१०॥

३ विशां यजमान-रूपाणां प्रजानाम् ॥ १ ॥ ३६ ॥ ५ ॥

४ विश्वेषां विशां सर्वासां प्रजानां यजमानानाम् ॥१॥१२७॥८॥

५ विश्-पतिः ऋत्विग्रूपाणां प्रजानां अतिशयेन पालकः ॥ १॥१२८॥७॥

६ विशः प्रजायाः ऋत्विग्रूपायाः ॥५॥३॥५॥

७ विशे यजमानाय वाजिनं अन्नवंतं पुत्रम् ॥५॥६॥३॥

८ विशः यजमानाः ॥ ५ ॥ ८ ॥ २ ॥

९ विशे विशे सर्वस्मै यजमानाय ॥ ५ ॥ ८ ॥ ५ ॥

१० शश्वतीनां नित्यानां विशां ऋत्विग्यजमान—लक्षणानां विश्पतिं स्वामिनम् ॥ ६ ॥ १ ॥ ८ ॥

११ विशां यजमानानां दमे गृहे ॥६॥२॥१०॥

१२ सर्वया विशा समस्तेन स्वकीयेन परिजनेन ॥५॥२७॥६॥

१३ मानुषीः मनोः संबंधिन्यः विशः प्रजाः होतारः ॥३॥६॥३॥

१४ मनुष्यासु मत्वा कर्म कुर्वतीषु विक्षु ऋत्विग्रूपासु प्रजासु १॥१४८॥१॥

१५ विश्पतिं यजमानानां पालकं त्वां विशः यजमानाः॥२॥१॥८॥

इस प्रकार "विश्" शब्द का सामान्य प्रजाजन जनता ऐसा न करके, खेंचकर ऋत्विजों की मंडली ऐसा किया है। वास्तव में यजमान और ऋत्विज ही केवल प्रजाजन नहीं होते। ऊपर विश् शब्द का (१२ में) "स्वकीय परिजन" ऐसा विचित्र अर्थ भी किया है। तथा एक स्थान पर शत्रु ऐसा अर्थ किया है:—

१६ विशः संग्रामेषु वर्तमानाः शत्रुभूताः प्रजाः ॥१॥६९॥३॥

इस प्रकार अनेक शब्दों का अध्याहार करके मंत्रों के अर्थ किये जांय तो मनमाने जैसे चाहे वैसे अर्थ बन सकेंगे।

(५) जन शब्द मनुष्यवाचक है परन्तु उसका अर्थ श्री० सायणाचार्य कैसा करते हैं देखिये:—

१ जनेभ्य सुहवं. यजमानार्थं आह्वातुं सुशकम् ॥१॥५८॥६॥

२ जनान् यजमानान् ॥१॥१४०॥१२॥

३ जनानां अध्वर्य्वादीनाम ॥ ५ । १ । ५ ।

४ जनानां यजमानानाम ५, १६, २,

५ विश्वे सर्वे जनासो जनाः ऋत्विजः ५, २३, ३,

६ जनानां यजमानानां पुत्रादीनाम् ६, १, ५,

इस प्रकार जन शब्द का अर्थ सामान्य मनुष्य न करके केवल यजमान, अध्वर्यु, ऋत्विज, ऐसा विशिष्ट किया है। वास्तव में जन शब्द का ऐसा अर्थ किसी कोश में नहीं मिलेगा। शब्द का मूल अर्थ न देकर लक्षणा से अर्थ घुमाना केवल खेंचातानी है।

(६) दाशुष् शब्द का दाता ऐसा अर्थ है परन्तु उसको भी यजमान पर घटाया है।

१ दाशुषे हविर्दत्तवते यजमानाय। १, ४४, ४॥ १,२७,६,

२ दाशुषे मर्ताय हविः प्रदस्य यजमानस्य। १, ४५, ८,

केवल दाता ऐसा सामान्य ही अर्थ दाशुष् शब्द का है। न कि यजमान परन्तु सब मंत्र यज्ञयाग पर घटाने के समय साधारण अर्थ से समाधान नहीं हो सकता।

[७] मनुष्य शब्द का अर्थ केवल यजमान किया जा सकता है ऐसी कोई भी कल्पना नहीं कर सकता। परन्तु श्री० सायणाचार्य उसका भी अर्थ यजमानहि बताते हैं। देखिए:—

१ मानुषेषु यजमानेषु। १, ६०, ४.

२ मनोरपत्ये यजमानरूपायां प्रजायाम्। १, ६८, ४.

३ मनुषः मनुष्यस्य अध्वर्योः। १, १२८, १.

४ मानुषे मनुष्यस्य यजमानस्य॥ १, १२८,७.

५ मानुषाणां मनुष्याणां यजमानानां संबंधीनि १, १२८, ७,

६ मानवस्यते मानवान् ऋत्विजः कर्मार्थे इच्छते यजमानाय १, १४०, ४,

७ मनुषा युगा मनोः सम्बधीनि जायापति-रूपाणि होत्राध्वर्युरूपाणि वा १, १४४, ४.

८ मनवे मनुष्याय यजमानाय १, १८९, ७,

९ मनुषो मनुष्यस्य यजमानस्य २, २, ७,

१० मानुषाद् होतुः २, ३, ३,

११ मनुषा मनुष्येन यजमानेन २, १०, १,

१२ मनुषो मनुष्यस्य यजमानस्य विशः प्रजाः ऋत्विग्लक्षणाः ६, १४, २,

इस प्रकार सामान्य मनुष्यवाची, मनुष्य, मनुष्, मानुष, मनोः अपत्य; आदि शब्द यज्ञ पर लगाये गये हैं, प्रत्येक शब्द का सामान्य अर्थ मनुष्य ऐसाहि पहिले दिया है परन्तु पश्चात् यजमान, होता, ऋत्विज्, आदि विशेषण लगाकर उसको यज्ञ में घटाने का प्रयत्न किया है ॥

(८) क्षिति शब्द का मूल अर्थ भूमि है, पश्चात भूमिस्थ मनुष्य ऐसा हुआ है; यह शब्द भी जनता का वाचक है, परन्तु उसको भी यजमान पर सायणाचार्य ने घटाया है:—

१ क्षितीनां यजमान लक्षणानां प्रजानाम् १, ७, २, ७,

२ क्षितयो मनुष्या ऋत्विजः ६, १, ४,

३ क्षितीनां यजमानानाम् ४, ७, १,

क्षिति शब्द का इस प्रकार अर्थ बनाने के लिये कोई आधार नहीं, केवल यज्ञ पर घटाने के लिये ही इस प्रकार शब्दों के अर्थ खेंचे गये हैं।

(९) कवि शब्द काव्य निर्माता, अतींद्रिय अर्थों को देखने वाला (poet) इस प्रकार अर्थ बताता है, परन्तु सायणभाष्य में उसको भी पूर्वोक्त प्रकार से ही ढाला गया है:—

१ कविभिः मेधाविभिः ऋत्विग्भिः सह १, ७६, ५,

२ कवयः क्रांतदर्शिनो अध्वर्य्वादयः ३, ८, ४,

इस प्रकार कवि शब्द की अवस्था बनाई है, होम हवन करने वाला कवी किस प्रकार हो सकता है ऐसी शंका यहां किसी को भी करनी उचित नहीं. क्योंकि जहां मनुष्य शब्द का भी यजमान अर्थ बना है वहां कवि शब्द अध्वर्यु पर लगाया गया तो क्या आश्चर्य है? इसी प्रकार निम्न शब्द भी देखने योग्य हैं:—

(१०) **मघवन्** शब्द का धनवान् ऐसा अर्थ है परन्तु सायण भाष्य में उसका भी अर्थ यजमान किया है:—

१ मघवद्भ्यः हविर्लक्षणधनयुक्तेभ्यो यजमानेभ्यः १,५८,६,

(११) **आर्य-मनु** शब्द का श्रेष्ठ मनुष्य ऐसा अर्थ सुप्रसिद्ध है। परन्तु उसका अर्थ भी यजमान ही बनाया है:—

आर्याय विदुषे मनवे यजमानाय १, ५६, २,

(१२) **मरुत्** शब्द का अर्थ मितभाषी, न रोने वाला, प्राण, वायु इस प्रकार है परन्तु सायणभाष्य में उसको ऋत्विग् अर्थ में लिया है:—

मरुत्सु ऋत्विक्षु १, १४२, ६,

(१३) **पितृ** शब्द का पालक ऐसा अर्थ है परन्तु उसको भी यजमान बनाया है:—

पितृभ्यः पालकेभ्यो यजमानेभ्यः २, ५, १,

(१४) सूरि शब्द का अर्थ बुद्धिमान विद्वान् ऐसा प्रसिद्ध है, परन्तु श्री० सायणाचार्य जी ने उसको भी ऋत्विजों पर घटाया है:—

१ सूरयः स्तोतारो ऋत्विज. २, २, ११,

२ सूरयो मेधाविनो यजमानाश्च २, २, १२,

(१५) कृष्टि शब्द कृषि-कर्म कर्ता मनुष्य का मुख्य तया वाचक है, गौण वृत्ति में साधारण मनुष्य ऐसा भी उसका अर्थ हो सकता है, परन्तु सायणभाष्य में इसका अर्थ ऋत्विज ऐसा किया है ॥

१ कृष्टयो मनुष्याः ऋत्विजः १. १६, ३,

२ कृष्टीनां ऋत्विग्यजमानानां मध्ये ५, १, ६,

(१६) धीर शब्द धैर्यशाली, द्वंदों में न डरने वाला ऐसा अर्थ बताता है, परन्तु श्री० सायणभाष्य में यह शब्द भी अध्वर्यु अर्थ में दिया है:—

१ धीराः प्रज्ञावन्तः अध्वर्य्वादयः ३, ८, ५,

२ धीराम: धीराः धीमन्तः प्रयोगज्ञा अध्वर्य्वादयः १,१४६,४,

(१७) मनीषी शब्द मन स्वाधीन रखने वाले विद्वान का वाचक है परन्तु उसका भी अर्थ सायणभाष्य में अध्वर्यु बना है:-

मनीषिणः धीमन्तो अध्वर्युप्रभृतयः ३, १०, १,

(१८) मुमुक्षु शब्द मुक्त होने की या मुक्त करने की इच्छा करने वाला ऐसा अर्थ बताता है, परन्तु श्री० णाचार्य

शब्द के साथ भी आहुतियों का संबन्ध जोडते हैं:—

मुमुक्षवः मुमुक्षवः आहुतिद्वारा यजमानं मोक्तुं इच्छवः।

१, १४०, ४,

(१६) नाव, नौ, शब्द नौका अथवा किश्ती का वाचक है, परन्तु सायण भाष्य में इसका अर्थ सोमयाग ऐसा किया है।

१ नावं संसारोत्तारिकां सोमयागात्मिकां नावम्। १, १४०, १२,

२ नित्याऽरित्रां नियत अन्विग्रूपोदकाकर्षणकाष्ठ-

साधनोपेताम्। १, १४०, १२,

(२०) रत्न शब्द का अर्थ श्री० सायणाचार्य जी ने हवि-द्रव्य, हवन सामग्री ऐसा विलक्षण किया है:—

रत्नं रमणीयं हविः। १, १४१, १०,

यह अर्थ देखकर आश्चर्य प्रतीत होता है कि यदि इसी प्रकार अर्थ होने लगे, तो मंत्रों के अर्थों की शाश्वति कैसी रह सकती है।

(२१) श्येनी शब्द श्वेत, सफेद ऐसा अर्थ बताता है परन्तु सायणभाष्य में इसी का अर्थ काला रंग ऐसा किया है:-

श्येनी श्यामवर्णा वर्तनिः मार्गः। १, १४०, ६,

श्येत, श्वेत, श्येन, श्येनी ये सब शब्द सफेद रंग के वाचक हैं। इनका परस्पर सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ है। जिसको देखने से पता लग सकता है कि "श्येनी" शब्द का अर्थ किसी प्रकार

भी "श्यामवर्ण" ऐसा नहीं हो सकता, परन्तु इस मंत्र को पार्थिव अग्नि पर घटाने के लिये श्री० सायणाचार्य को इस का अर्थ बदलना पड़ा।

(२२) **व्योमन्** शब्द का अर्थ आकाश ऐसा सुप्रसिद्ध है। इस शब्द का अर्थ वेदि ऐसा सायणभाष्य में दिखाई देगा:-

व्योमनि विविध-रक्षणवति वेदि देशे। १, १४३,२

"वि-ओमन्" विशेष रीति से रक्षण करने वाला ऐसा इसका धात्वर्थ है, उसको प्रथम लिखकर फिर वेदि प्रदेश ऐसा इसका अर्थ लिखते हैं, इस प्रकार मनमाने अर्थ हो सकते हैं, "व्योमन्" शब्द के "वि-ओम्-अन्" इस प्रकार पद बनाकर "प्रकृति-ईश्वर-जीव" इस त्रयी का वाचक व्योमन् शब्द है ऐसी कई कल्पना करते हैं।

"ओम्" शब्द का परमेश्वर अर्थ है, "अन्" शब्द जीवन के (to breath, to live) अर्थ में आता है इस कारण यह जीव का वाचक हो सकता है, "वि" का अर्थ विरुद्ध है, जो ईश्वर जीवों से गुण धर्म में विरुद्ध है वह प्रकृति "वि" शब्द ने बतानी है, इस प्रकार की कल्पना श्री० सायणाचार्य जी के अर्थ की अपेक्षा अधिक ग्राह्य हो सकती है।

(२३) **वत्स** शब्द का अर्थ पुत्र लड़का ऐसा है, परन्तु सायणभाष्य में अग्नि ऐसा अर्थ किया है:—

वत्सं वत्सस्थानीयं पुत्रवद्रूपं हेतुं अग्निम्। १, १४६, ३,

(२४) **अध्वन्** शब्द मार्ग वाचक है, परन्तु उसका अर्थ अग्नि के प्रान्त प्रदेश ऐसा सायण भाष्य में किया हैः—

अध्वनः मार्गान् अग्नेः प्रान्तप्रदेशान् केशाद्यमेध्यरहितान्।
१, १४६, ३,

(२५) **गर्भ** शब्द प्रसिद्ध है, इसका भी अर्थ श्री० सायणाचार्य जी ऋत्विज करते हैं:

गर्भेभ्यः, षष्ठ्यर्थे चतुर्थी, ऋत्विजां गर्भवत् शिशुवद् अत्यन्त रक्षणीयानाम्॥ १, १४६, ५,

[२६] **मातरिश्वा** शब्द का अर्थ किस प्रकार किया है देखने योग्य हैः—

मातरि फलस्य मातरि यागे श्वसिति चेष्टते इति मातरिश्वा यजमानः॥ १, १४३, २,

"फल की माता यज्ञ है, उस यज्ञ में कार्य करता है इसलिये यजमान ही मातरिश्वा है," मातरिश्वा वायु का नाम है, जीव ऐसा भी इसका अर्थ हो सकता है, परन्तु श्री० सायणाचार्य जी ने माता शब्द का अर्थ यज्ञ बनाकर मातरिश्वा शब्द का यजमान अर्थ बनाया है। किसी कोश में इस प्रकार अर्थ नहीं मिलेगा।

[२७] **पितुः** शब्द का अर्थ अन्न है क्योंकि वह सब का पालक है, परन्तु इसका अर्थ पशु ऐसा किया हैः—

पितुः अन्नस्य पशुलक्षणस्य॥ १, १४१, ४,

केवल अन्न शब्द से पशु ऐसा अर्थ अथवा पशु संबन्धी अन्न ऐसा किस प्रकार अर्थ हो सकता है? अन्नवाचक पितुः शब्द का अर्थ पशु मांस ऐसा करना वेद के विरुद्ध है, क्योंकि वेद में "पितुः" का वर्णन निम्न प्रकार किया है:—

प्र यत् पितुः परमान्नीयते पर्या पृक्षुधो वीरुधो दंसु रोहति ॥
उभा यदस्य जनुषं यदिन्वत आदिद्यविष्ठो अभवद् घृणा शुचिः ॥ ऋ० १, १४१, ४,

(यत् पितुः) जो अन्न (परमात्) श्रेष्ठ से (प्र नीयते) प्राप्त किया जाता है, उसके लिये (पृ-क्षुधः) क्षुधा की पूर्ती करने वाली (वीरुधः) वनस्पतियां (दंसु) दांतों में (परि-आ रोहति) आरोहण करती हैं, (उभौ) दोनों प्रकार के लोक (अस्य) इस अन्न का (यत् यत्) जो २ (जनुषं) स्वभाव होता है उसे (इन्वतः) प्राप्त करते हैं जिस से मनुष्य (आत् इत्) शीघ्र ही (यविष्ठः) बलवान् (*घृणा) तेज से युक्त और (शुचिः) शुद्ध पवित्र (अभवत्) होता है ॥

इस मंत्रार्थ से सिद्ध है कि पितुः शब्द का अर्थ वानस्पत्य भोजन है जो भोजन (शाकाहार) (१) श्रेष्ठ पुरुषों से प्राप्त होता है,(२)वह अन्न केवल वनस्पति-धान्य-आदि से बनता है,और(३) उसीसे बल तेज और पवित्रता रहती है,ये तीन बातें शाकाहार में होती हैं ऐसा उक्त मंत्र में कहा है अर्थात् मांसाहार (१) नीच पुरुषों

*घृ-क्षरणा दीप्त्योः ॥ घृ का अर्थ तेज है ।

से प्राप्त होता है,(२)उसके लिये अन्तड़ियां दांतों पर चढ़तीं हैं (३) और वह निर्बलता, निस्तेजता, और अपवित्रता का हेतु है, अर्थापत्ति से ये तीन बातें ध्वनित होने का संभव है. अस्तु, यहां इतना ही बताना है कि अन्नवाचक "पितुः" शब्द का जो अर्थ "पशुसम्बन्धी अन्न" ऐसा श्री० सायणाचार्य जी ने किया है यह ठीक नहीं, क्योंकि पितु सम्बन्ध नाम केवल मनस्वियों से ही बनने वाला है ऐसा उक्त मन्त्र में स्पष्ट कहा है।

इस प्रकार सायणभाष्य में शब्दों के विपरीत अर्थ किये हैं। और वाक्यों को भी यज्ञ पर बनाने के लिये बहुत खेंचा है। श्री० सायणाचार्य जैसे अद्वितीय विद्वान् भी सुसंगत और असंगत अर्थ की पर्वाह न करते हुए, इस प्रकार विपरीत अर्थ करने के लिये क्यों प्रवृत्त हुए यह प्रश्न यहां उत्पन्न हो सकता है, इस प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व वेद के अर्थ करने के भिन्न २ पद्धति वालों की ओर थोड़ी सी दृष्टि डालनी चाहिए।

निरुक्त आदि ग्रन्थों से पता लग सकता है कि वेद का अर्थ करने के कई प्रकार निरुक्तकार श्री० यास्काचार्य के समय के पूर्व से ही प्रचलित थे।

(१) पहिला प्रकार **आध्यात्मिक अर्थ** करने वालों का है. उपनिषदों में इस पद्धति का अवलम्बन किया हुआ है, ब्राह्मण ग्रन्थों में भी सैकड़ों स्थानों पर आध्यात्मिक अर्थ समझने के लिये मार्गदर्शक सूचनाएं दी हैं, शरीर के अन्दर जीव और

इन्द्रियों तथा जगत के अन्दर परमात्मा और अग्न्यादि दैवी शक्तियों का वर्णन, उन्नति के नित्य अटल नियमों को प्रकाशित करने के लिये, अग्न्यादि देवताओं के मिष से वेद में किया है, ऐसा आध्यात्मिक पक्ष वालों का सिद्धान्त है।

(२) **ऐतिहासिकों** अथवा पौराणिकों का दूसरा पक्ष है, वेद मन्त्रों का मूल आध्यात्मिक अर्थ काल्पनिक कथाओं के रूप से लिखा गया है जो पुराणों और गाथाओं के नाम से प्रसिद्ध है।

यहां प्रश्न उत्पन्न होता है, कि मूल आध्यात्मिक अर्थ को दबाकर कथाओं का रूप प्रकाशित कर के नया ऐतिहासिक पक्ष खड़ा करने का प्रयोजन क्या था ? इसके उत्तर में निवेदन मात्र है कि, आध्यात्मिक पक्ष ही केवल सच्चा है इस में कोई सन्देह नहीं परन्तु वह बहुत रूखा है, उसमें रोचकता नहीं, सब लोगों को रोचकता के बिना आकर्षित करना बड़ा कठिन है, इस लिये मूल आध्यात्मिक पक्ष की सच्चाई रोचक बनाकर कथाओं के रूप से प्रकाशित करनी आवश्यक होगई, यही बात पुराणों में स्पष्टतया कही है:—

एवं जन्मानि कर्माणि ह्यकर्तुरजनस्य ॥

वर्णयन्ति स्म कवयो वेदगुह्यानि हृत्पते॥३५,श्री०भागवत,१,३,

भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः॥ २९,श्री०भागवत१,४,

अजन्मा ईश्वर के जन्म और कर्म जो कवि वर्णन करते आये हैं वे वेदों के अन्दर गुप्त हैं।

भारत के मिष से वेद का ही अर्थ बताया गया है।

इस प्रकार पुराणों में स्पष्ट कहा है, वेद के रूखे परन्तु सत्य और उन्नति कारक उपदेश मीठे और रोचक बनाने के लिये कवियों ने उन्हीं उपदेशों पर कथाओं का सुन्दर पहनाव पहनाया है, इससे पता लगेगा कि ऐतिहासिक पक्ष खड़ा होने का कारण क्या था। जान बूझकर हानि करने के लिये ऐतिहासिकों का पक्ष उत्पन्न नहीं हुआ था परन्तु आध्यात्मिक पक्ष की सहायता के लिये ही वह खड़ा हुआ था। जिस प्रकार हितकारक दवा की कड़वी गोली बालक खाते नहीं, बीमारी की यातनाओं को पसन्द करते हैं, परन्तु आरोग्य बढ़ाने वाली दवा को दूर फेंकते हैं। इस लिये वही गोली शर्करावगुंठित करके मिश्री का लेप ऊपर करके चतुर-वैद्य देता है, उसी प्रकार आध्यात्मिक सत्य उपदेश की कड़वी गोली, कथाओं की मिश्री के अन्दर लिपटा कर सांसारिक दीन पुरुषों को पौराणिकों ने देने की चेष्टा की है, परन्तु जिस प्रकार दवा के साथ मिश्री खाने का अभ्यास भी बालक के लिये दूसरी बीमारी लाने वाला होता है, ठीक उसी प्रकार पौराणिक कथाओं की मिश्री लोगों के अन्दर अवनति कारक अनेक दुर्गुण उत्पन्न करने वाली हो गई इस में कोई सन्देह नहीं, अस्तु।

(३) तीसरा पक्ष नैरुक्तों का है। शब्दों के मूल अर्थ की खोज करना इस पक्ष का मुख्य कार्य है। इस पक्ष के अनेक

विद्वान् हुए परन्तु सब से अर्वाचीन श्री० यास्काचार्य जी पच्चीसवीं सौ वर्ष पूर्व हो गये थे, इनके पश्चात् श्री० स्वामी दयानन्द सरस्वती जी तक कोई विद्वान् इस पक्ष का प्रतिपादन करने के लिये आविर्भूत नहीं हुआ, शब्दों के मूल अर्थ बता कर वेदों का अर्थ वेदों के ही आधार से करने का बड़ा कार्य इस संवत्सर शतक में श्री० स्वामी दयानन्द जी ने किया। इनकी नैरुक्त प्रणाली है, श्री० सायणाचार्य जी के भाष्य से सब लोक प्रभावित होने के कारण श्री० स्वामी जी का भाष्य शुद्ध अर्थ प्रकाशक होने पर भी लोगों ने इसी को खेंचातानी का अर्थ मान लिया यह कोई आश्चर्य की बात नहीं, प्रारम्भ में इसी प्रकार अवस्था हुआ करती है, जब स्वाध्याय बढ़ेगा तब पता लगेगा अथवा कि श्री० स्वामी दयानन्द जी के अर्थों की शुद्धता मिलती है और श्री० सायणाचार्य जी के भाष्य में खेंचातानी मिलती है, नमूने के लिये थोड़ा सा सायणभाष्य का दिग्दर्शन ऊपर किया ही है।

(४) वेद का अर्थ करने में याज्ञिकों का पक्ष बड़ा प्रबल है, ब्राह्मण ग्रन्थों में तथा पूर्व मीमांसा में इस पक्ष का बड़ा आंदोलन है, इसी पक्ष से प्रभावित होने के कारण श्री० सायणाचार्य जी को उक्त प्रकार खेंचा तानी करनी पड़ी है।

(५) मांत्रिक पक्ष भी एक हुआ है, जो समझता है कि वेद के मन्त्र केवल जप के लिये ही हैं, केवल जपसे अनेक प्रकार

की सिद्धि मिलती है ऐसा इस पक्ष के अनुयायियों का मत है।

इसके अतिरिक्त (६) पौरुषेयवादी (७) अपौरुषेयवादी, (८) शब्दानुपूर्वीवादी, (९) अर्थानुपूर्वीवादी, (१०) स्वतन्त्र विभिन्न देवता वादी, (११) एकेश्वरी, इत्यादि प्राचीन मतवादी लोग हैं, और (१२) आधुनिक युरोपियन पद्धति से निरीक्षण करने वालों का पक्ष नया है। परन्तु यही पक्ष इस समय बहुत प्रबल है, अन्य पक्षों में ऐसे प्रबल संशोधक, सूक्ष्मदर्शी और साधन सम्पन्न विद्वान् नहीं हैं जैसे आधुनिक यूरोपियन मतानुयायियों में हैं, इस लिये यह पक्ष प्रतिदिन प्रबल हो रहा है, अस्तु।

श्री० सायणाचार्य के समय आधुनिक यूरोपियनों का पक्ष नहीं था। न इस समय के अनुकूल उस समय साधन संपन्नता थी, अन्य पक्षों में से केवल दो पक्ष ही उस समय अधिक प्रबल थे, इतिहास वादी और यज्ञ वादी, इन्हीं के प्रभाव से प्रभावित होकर श्री० सायणाचार्य जी ने तथा उस समय के उवट महीधरादिकों ने अपने भाष्य रचे हैं, इस प्रकार पूर्वग्रह दूषित होने से विद्वद्वर्य श्री० सायणाचार्य भी गलती के मार्ग पर चलने से रुके नहीं, यही पूर्व स्थल पर उत्पन्न हुए २ प्रश्न का उत्तर है॥

अब सोचना यह है कि, इसप्रकार का पूर्वग्रह दूषित सायण भाष्य वेदों का स्वाध्याय करने वालों के लिये उपयोगी है या नहीं? मेरा निज मत यह है कि, यदि पौराणिक और याज्ञिक

मत की कलई हटाई जाय तो शेष सायण भाष्य उत्तम रीति से सहायकारी हो सकता है, श्री०सायणाचार्य निःसन्देह पौराणिक और याज्ञिक मत से प्रभावित हुए थे परन्तु उस अवस्था में भी वे शब्दों के मूल अर्थों को भूले न थे। यहां ऊपर दिये हुए सायणभाष्य के अवतरण देखने योग्य है, बहुधा प्रत्येक शब्द के अर्थ देने के समय प्रथमतः मूल अर्थ देकर पश्चात् उसको यज्ञ पर या कथा पर लगाया है। जैसेः—

१ नरः **नेतारो** ऋत्विजः ॥ ऋ ५, ७, २.

२ व्योमनि **विविध रक्षणावनि** वेदिदेशे ॥

ऋ १, १४३, २.

३ मर्तः **मरण-धर्मा** यजमानः ॥ ऋ ६, २, ४.

इस भाष्य को देखने से पता लग जायगा कि शब्दों का मूल अर्थ प्रथम देकर पश्चात् उसको यज्ञ पर घटाया है, वेदाध्यायी पाठकों को उचित है कि वे पहिला मूल अर्थ लेकर दूसरा अर्थ न ले। इस प्रकार

१ **नरः नेतारो** (नेता लोग)

२ **व्योमनि विविधरक्षणावति** (विविध प्रकार से रक्षण करनेवाला)

३ **मर्तः मरण धर्मा** (मरण स्वभाव वाला)

ये मूल अर्थ लेने योग्य हैं। बहुत स्थानों पर इस प्रकार के मूल अर्थ श्री० सायणाचार्य जी ने किये हैं। और ये सब बड़े

सहायककारी होने वाले हैं। सायणभाष्य पढने के समय इन्हीं अर्थों की ओर ध्यान देना चाहिये न कि उनके दूसरे अर्थ की ओर। जो मनुष्य इसप्रकार विचार की दृष्टि से न देख सकेंगे। उनके लिये सायणभाष्य हानि कारक होगा परन्तु जो इस हंसक्षीर न्याय से निरीक्षण कर सकेंगे उनके लिये वही उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

इस प्रकार सायणभाष्य का वास्तव स्वरूप, उसका पूर्वग्रह दूषित होने का कारण, और हमें उससे लाभ किस प्रकार हो सकता है इन तीन बातों का विचार होगया। अब इसके साथ २ श्री० स्वामी दयानन्द जी के भाष्य के विषय में भी एक दो शब्द कहना अनुचित नहीं होगा।

श्री० स्वामी दयानन्द जी का भाष्य संस्कृत और हिंदी में विभक्त हुआ है। संस्कृत में पदार्थ, अन्वय और भावार्थ हैं तथा आर्य भाषा में दण्डान्वय सहित अर्थ और भावार्थ है, संस्कृत भाष्य को हिन्दी भाष्य के साथ मिलाकर मैंने बहुत निरीक्षण किया, जिससे मुझे पता लगा कि, संस्कृत में जो अर्थ की गंभीरता है वह भाषा में नहीं है। कई स्थानो पर किसी अंश में विरुद्ध अर्थ भी छप गये हैं। मुद्रकों के प्रमाद से तथा निरीक्षकों की अव्यवस्था से जो अशुद्धियां रहीं हैं उन को छोड कर भाषा भाष्य में अर्थ विषयक अशुद्धियां भी बहुत

हैं इसलिये संस्कृत भाग के समान *हिन्दी भाष्य प्रामाणिक मानने योग्य नहीं। संस्कृत भाष्य में जो पदों का अर्थ श्री० स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने दिया है वही उनकी योग विशुद्ध अतुल बुद्धिमत्ता का निदर्शक है, शब्दों के मूल अर्थ वहाँ रूढ़ी के साथ लिये हैं, मैंने ये अर्थ बहुत सूक्ष्म दृष्टि से

---

*श्री स्वामी जी के भाषा भाष्य के विषय में श्री० स्वामी जी का निम्न पत्र देखने योग्य है:—

"........और समर्थदान से लिखा है कि ज्वालादत्त नई, भाषा बनाता है। यदि वह हमारे संस्कृत और अभिप्राय के अनुकूल हो तो ठीक है। नहीं तो जो पोप लीला की भाषा बनाकर वहां ही छपवा दे और हमको मालूम न हो पश्चात् प्रसिद्ध होने से कोलाहल होगा तो क्या होगा। हां अब तक तो उसने कुछ नहीं किया है परन्तु संभव है कि कुछ गड़बड़ करे तो हो सकता है। इस लिये जो कुछ वो बनावे उसको समर्थ दान देखले। जैसा कि अब भाषा में एक गोलमाल शब्द (देवता) लिख दिया था सो यह हमारे दृष्टि गोचर होने से शुद्ध हो गई। यदि वहां ऐसी छपगई तो बड़ी हानी का संभव है। इस लिये ऐसा न होना चाहिये। ...."

मि० आ० ब० ९
शुक्रवार सं० १९४०
जोधपुर, मारवार

दयानन्द सरस्वती

ब्राह्मण और निरुक्त के अर्थों के साथ मिलाकर देखा। जिस से मुझे पता लगा कि श्री० स्वामी जी के अर्थ लिखने की शैली यही है कि जो ब्राह्मण और निरुक्तकारों की अर्थात् जो आर्ष प्रणाली थी।

मेरे ख्याल में श्री० स्वामी जी ने संस्कृत में केवल पदों के अर्थ दिये हैं यही उनका बड़ा उपकार है। दण्डान्वय के साथ अर्थ देते तो इतना उपकार न होता, कई लोक इस पदार्थ का मूल्य नहीं समझते और कहते हैं कि भाष्य समझ में नहीं आता, भाष्य झटपट समझ में नहीं आता यह बात ठीक है। श्री० स्वामी जी ने वेद भाष्य के नाम से कोई उपन्यास नहीं लिखा है कि जो सोने के समय बिस्तरे पर लेटे हुए पढने ही समझ में आजावे। यह मन्त्रों का भाष्य है। मन्त्र वे होते हैं कि जो मनन से ही समझे जासकते हैं, मन्त्रों पर मनन करने के लिये पदों के शुद्ध अर्थों की आवश्यकता होती है, वह पदों का शुद्ध अर्थ श्री० स्वामी जी ने दिया है। मनन का कार्य पढने वाले का है न कि भाष्यकार का। जो मनन करेगा वही उससे लाभ उठायेगा। मनन न करने वाले के लिये श्री० स्वामी जी का पदों का अर्थ है नहीं, जिनके पास समय न हो उनको उचित है कि वे उसको न देखें, अथवा एक दो मन्त्रों पर ही सालों साल विचार करके अर्थामृत का आस्वाद लेने की चेष्टा करें। श्री० स्वामी जी के भाष्य का स्वाध्याय करने वालों से यही

इतनी ही प्रार्थना है कि वे केवल भाषा भाष्य ही पढकर सन्तुष्ट न हों, परन्तु जहां तक हो सके वहां तक पदों के अर्थों को स्मरण करके स्वयं मनन करके मूल अर्थ की खोज करने का प्रयत्न करें। ऐसा करने से बडे अद्भुत अर्थ प्रतीत होने लगते हैं, ऐसा मेरा अनुभव है।

श्री० स्वामी दयानन्द कृत वैदिक शब्दार्थ के विषय में यहां एक और बात कहनी आवश्यक है, कि किसी मन्त्र के पदों का अर्थ सोचने के समय उससे पूर्व उसी पद के जो २ अर्थ श्री० स्वामी भाष्य में आये हैं उनको भी साथ २ मन में लाना चाहिए। श्री० स्वामी जी ने विस्तार भय के लिये पदों के सब अर्थों को वारंवार दोहराया नहीं है। यह बात गृहीत समझी गई है कि पढने वाले क्रमशः ही मन्त्रों को सोचेंगे, और अगला मन्त्र पढने के समय पूर्व मन्त्र को भूलेंगे नहीं।

शब्दों के अन्य अर्थ जो सिद्धान्त के अविरोधी हों लेने में कोई क्षति नहीं हो सकती। जैसा "वाजः" शब्द है--इसके *अर्थ बल, अन्न और धन ऐसे हैं, श्री० स्वामी जी ने ये सब के सब अर्थ प्रत्येक स्थान में दिये नहीं। न देने की आवश्यकता है, प्रसंगवशात् दूसरे अर्थों को लेकर विशेष अर्थ की कल्पना

*वाजः शब्द के अर्थ—Strength, vigour, energy, food, wealth, speed, battle, conflict, sound, शक्ति, अन्न, धन, गति, युद्ध, शब्द।

की गई तो कोई हानि नहीं, जो अर्थ होगा वह प्रकरणानुकूल, दूसरे मन्त्रों के साथ अविरोधी होना चाहिए, भिन्न २ अर्थ ऋषि मुनियों के भी किये हुए हैं:—देखिए:—

चत्वारिश्रृंगा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षः सप्त हस्तासो अस्य।

यह ऋग्वेद का मन्त्र श्री० पतंजलि मुनी ने व्याकरण पर लगाया और निम्न अर्थ किया है:—

(१) चत्वारिश्रृंगा—नाम, क्रिया, उपसर्ग और निपात ये चार सींग है।

(२) अस्य त्रयः पादाः—भूत, भविष्य, और वर्तमानकाल ये तीन पांव हैं।

(३) द्वे शीर्षे—नित्य शब्द और कार्य शब्द ये दो शीर्ष हैं॥

(४) अस्य सप्त हस्तासः-सात विभक्तियां इस के सात हाथ हैं।

इस प्रकार व्याकरण शुद्ध शब्द का वर्णन श्री० पतंजलि मुनि ने किया है। इसी को श्री० यास्काचार्य जी ने यज्ञ पर लगाया है।

देखिये:—

(१) चत्वारि श्रृंगा—चार वेद ये चार सींग हैं।

(२) त्रयः अस्य पादाः—प्रातः सवन, माध्यंदिन सवन और सायं सवन ये यज्ञ के तीन पांव हैं।

(३) द्वे शीर्षे—प्रायणीय और उदनीय ये दो मस्तक हैं।

(४) सप्त हस्तासः—सात छंद ये इसके सात हाथ हैं।

यह यज्ञ पर अर्थ श्री० यास्काचार्य जी करते हैं। इस का

भौतिक अर्थात सामाजिक अर्थ निम्न प्रकार हो सकता है:—

(१) चत्वारि शृंगा—राष्ट्र के ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये चार सींग हैं।

(२) अस्य त्रयः पादाः—बाल, तरुण, वृद्ध ये राष्ट्र के तीन पांव है।

(३) द्वे शीर्षे - स्त्री पुरुष ये दो मस्तक हैं।

(४) सप्तहस्तासः—देव, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, निषाद, और राक्षस ये सात हाथ हैं।

कोई विचारशील विद्वान् इससे भिन्न अर्थ भी कर सकता है। भिन्न अर्थ करना कोई विरोध नहीं, उक्त प्रकार पतंजलि और यास्क के अर्थ परस्पर भिन्न होने पर भी परस्पर विरोधी नहीं, यह बात यहां विशेष ध्यान में रखनी चाहिए, यदि मूल सिद्धांत में विरोध हुआ तो ही उसको विरुद्ध कहा जा सकता है। अर्थात् दैविक, भौतिक और आत्मिक दृष्टी से कितने भी भिन्न २ अर्थ होगये तो भी वे परस्पर विरोधी नहीं समझे जाते। पदों के अर्थों का ज्ञान होने के पश्चात् किये हुए विशेष मनन से अनेक अर्थों का बोध हो सकता है। इसी लिये श्री० स्वामी जी ने अपने संस्कृत भाष्य में पदों का मूल अर्थ दिया है, वे दण्डान्वय के साथ अर्थ नहीं दे सकते थे यह बात नहीं परन्तु नहीं देना चाहिये था, क्योंकि उससे विचार की दिशा और मनन की गति रुक जाती है, पदों के अर्थ बताकर मनन करने के लिये शिष्य को

स्वतन्त्र छोड़ना चाहिये। यह वैदिक परम्परा उपनिषदों में भी पाई जाती है। उसी के अनुसार श्री० स्वामी जी ने अपना भाष्य रचा है। अब जहां मनन से अन्यान्य अर्थों को भी खोजना है वहां एक हि भावार्थ से काम नहीं चल सकता यह स्वयं सिद्ध है। इस से पता लगेगा कि श्री० स्वामी जी ने दिया हुआ भावार्थ एक अंश को लेकर है न कि सब अंशों से परिपूर्ण। अर्थात् श्री० स्वामी जी के भाष्य की विशेषता पदों के मूल अर्थों के लिये है न कि किसी अन्य बात के लिये॥

शब्दों का मूल अर्थ क्यों खोजना चाहिए, ऐसी शंका कोई कर सकता है, उसके लिये यह उत्तर है कि मू अतिप्राचीन पुस्तक के वाक्यों का अर्थ मूल अति प्राचीन शब्दार्थ से ही ठीक ठीक विदित हो सकता है। शेक्सपीयर कवी के समय कई अंग्रेज़ी शब्दों के अर्थ भिन्न थे अब के अर्थ लेकर देखने से उस कवी का मर्म ध्यान में नहीं आ सकता। इस लिये अति प्राचीन अर्थ ढूंढने की, वेदार्थ ज्ञान के लिये, अत्यन्त आवश्यकता है। जो शब्दों के आधुनिक अर्थ लेकर वेद का अर्थ देखेगा वह निःसन्देह फंस जायगा॥

योरप के विद्वान समझते हैं कि तुलनात्मक भाषा ज्ञान से वेद के अर्थों की खोज की जासकती है। अनेक उपायों में यह एक उपाय है इस में मुझे सन्देह नहीं परन्तु यह उपाय निश्च-

यात्मक नहीं है। इस मार्ग पर चलने से संशय सागर में फंस जाने का संभव है। देखिए:--‘जाहिल” यह ऊर्दू का शब्द हिंदी में ‘मूर्ख, अनपढ़ मनुष्य” ऐसा अर्थ बताता है। इसी से बना हुआ मराठी “अहाल” शब्द “राजकीय गरम दल” के लिये प्रयुक्त होता है। “फाजिल” यह परशियन शब्द विद्वान का वाचक है परन्तु उस से बना हुआ मराठी “फाजील” शब्द “गुस्ताख” अर्थ में प्रयुक्त होता है।

पाठक यहां सोच करते हैं कि इन दोनों भाषाओं के तुलनात्मक ज्ञान से कोई विशेष लाभ नहीं होता है। जब तक मूल पर्शियन अर्थ न देखा जाय तब तक शब्द का सच्चा अर्थ विदितहि नहीं हो सकता। खाल्डियन और आवेस्तिक भाषा में वैदिक शब्दों के कोई भी अर्थ प्रचलित हों उन के कारण मूल शब्द के अर्थों में कोई हानि नहीं हो सकती। मराठी “फाजील” शब्द के अर्थ को परशियन “फाजिल” शब्द पर चढ़ा देने से अथवा फारशी फाजिल शब्द का अर्थ मराठी पर लगाने से जो अवस्था होगी वही अवस्था खाल्डियन अर्थ को वेद पर चढ़ाने से होगी। इस लिये योरप ने चलाई हुई तुलनात्मक पद्धति कोई विशेष लाभदायक नहीं हो सकती। जहां तक सहायता हो वहां तक उससे सहायता अवश्य लेनी चाहिये परन्तु उसके बन्धन से प्रतिबन्धित नहीं होना चाहिए। यही यहां मुझे कहना है।

वैदिक शब्दों के मूल अर्थ की खोज ऋषिमुनियों ने की है, उसी से विशेष सहायता प्राप्त हो सकती है। ऋषिमुनियों की खोज के परिश्रम से ही धातुपाठ बना है, शब्द का मूल से मूल अर्थ कौनसा है इसका निश्चय धातुपाठ से हो सकता है, ऋषियों ने जो खोज की है उससे अधिक खोज होना अब प्रायः असंभव प्रतीत होता है। इस समय की सब साधनें धातुओं के पूर्व रूप को बताने के लिये सर्वथा असमर्थ हैं, इस लिये हमारी खोज धातुओं को मूलरूप मानकर ही होनी चाहिए, धात्वर्थ को ही यौगिक अर्थ कहते हैं। यौगिक अर्थ शब्द का मूल अर्थ है, यौगिक अर्थ केवल प्रवाही होने के कारण वह अर्थ निश्चयात्मक भाव नहीं बता सकता, इसलिये उस प्रवाही यौगिक अर्थ को घनीभूत अर्थात् योगरूढी या रूढी का अर्थ बताने के लिये केवल वेद मन्त्रों का ही आश्रय करना चाहिए न कि अन्य भाषाओं का। उदाहरण के लिये "अग्नि" शब्द लीजिये, श्री०सायणाचार्य प्रायः पार्थिव आग को ही अग्नि शब्द से लेते हैं, परन्तु सूक्ष्म निरीक्षण से देखा जाय तो पार्थिव आग के लिये वेद में मंत्र बहुत ही थोडे हैं। अग्नि शब्द से अनेक विद्याओं का बोध मन्त्रों द्वारा किया जाता है इस लिये अग्नि शब्द के मूल अर्थ की खोज करनी चाहिये।

अग्नि शब्द में "अग" धातु "ज्ञान गमन प्राप्ति" अर्थ के साथ निवास करता है, ज्ञेय गम्य और प्राप्य वस्तु अग्नि है.

यह मूल प्रवाही अर्थ हो गया। अब इस अर्थ को वेदरूढ़ी में देखना है, वेद का अर्थ करने के समय रूढ़ी शब्द से **"वेदरूढ़ी"** समझनी चाहिए और इसी वेद रूढ़ी से मूल शुद्ध अर्थों की खोज करनी चाहिये, अब इस अग्नि शब्द का वेदरूढ़ी में क्या अर्थ है इसका विचार करना है।

अग्निना अग्निः समिध्यते। ऋ० मं० १, १२, ६,

ऐसा मंत्र है, "अग्नि से अग्नि प्रदीप्त किया जाता है" यह इस का शब्दार्थ है, इसमें एक प्रदीप्त अग्नि और दूसरा अप्रदीप्त अग्नि ऐसे दो अग्नि हैं। हमेशा अग्नि जलता ही रहता है, आग का कोयला ज्वाला न निकलने पर भी अन्दर २ जलता रहता है, ज्वाला भड़कने पर बाहर दीखने लगता है, अर्थात् अप्रदीप्त अग्नि यह चूल्हे की आग नहीं क्योंकि आग की न जलने की अवस्था कल्पना में नहीं लाई जा सकती, यदि अग्नि शब्द से यहां चूल्हे की आग नहीं लेनी, तो क्या लेना चाहिये, इस शंका का उत्तर इसी मन्त्र के उत्तरार्ध में है:—

अग्निना अग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा॥ ऋ०मं०१,१२,६,

"कवि, गृहस्थी और युवा अर्थात् जवान अग्नि है"। ऐसा इस मंत्र में कहा है, प्रतिभा संपन्न पुरुष को कवी कहते हैं, विवाहित पुरुष को गृहपति कहते हैं। बाल्य और वार्धक्य हीन पुरुष को युवा अर्थात् जवान कहते हैं, ये तीन विशेषण चूल्हे के आग के नहीं हो सकते, अर्थात् "कवि, गृहस्थी, युवा

अग्नि" किसी मनुष्य का नाम हो सकता है, जो मनुष्य जानने और प्राप्त करने योग्य हो और जो प्रतिभा संपन्न, गृहस्थी और जवान हो वही इस मंत्र के अग्नि शब्द से बोधित हो सकता है, इस प्रकार के तरुण पुरुष को दूसरा अग्नि संज्ञक पुरुष प्रदीप्त करता है, अप्रदीप्त तरुण को प्रदीप्त पुरुष प्रदीप्त करता है, अर्थात् ज्ञानी गुरु बुद्धिमान तरुण सच्छिष्य को ज्ञानी बनाता है, इस प्रकार मूल यौगिक अर्थ वेदरूढी में देखे जा सकते हैं। और देखिये:—

अग्नावग्निश्चरति प्रविष्टः। यजु० ५, ४,

"(अग्नौ) अग्नि में (प्रविष्टः) प्रविष्ट हुआ २ (अग्निः) अग्नि (चरति) चलता है।" इस में एक व्यापक और दूसरा अव्यापक अग्नि कहा हुआ है यहां भी चूल्हे की आग विवक्षित नहीं. ज्ञेय गम्य और प्राप्य होने से और व्याप्य व्यापक होने से जीव ईश्वर का ग्रहण अग्नि शब्द से यहां अभीष्ट है इस में कोई संदेह नहीं।

श्री० सायणाचार्य इन सब स्थान पर चूले में जलने वाले आग का ही ग्रहण करके विचित्र अर्थ करते हैं. परन्तु थोडा सा विचार करने से पता लग सकता है कि आग से यहां कार्य नहीं चल सकता।

अग्न्यादि देवताओं के स्वरूप का निश्चय करने के लिये उनके सब विशेषणों के वर्ग बनाने चाहिए, (१) शब्दों के मूल अर्थ अर्थात् धात्वर्थ अथवा यौगिक अर्थ (२) वेद में आये हुए विशेषण और (३) वेद की रूढी ये तीन प्रबल साधन हैं कि जिन के आधार से वेद का सच्चा मूल अर्थ इस समय भी ज्ञात हो सकता है।

इस निबंध में श्री० सायणाचार्य के भाष्य की समालोचना करके उसका ग्राह्य और अग्राह्य भाग किस प्रकार हंसक्षीर न्याय से पृथक् किया जा सकता है इस का विशेष वर्णन किया है, श्री० सायणाचार्य की भूल क्यों हो गई इसका वर्णन करके उस प्रकार की भूल न होने के लिये किस पद्धति का अवलंबन करना चाहिये इस का विवरण किया है यूरोपियन पद्धति का दोष कहां तक कितना है इस का दिग्दर्शन करके, श्री० स्वामी-दयानन्द सरस्वती के किये हुए *भाष्य की किस अंश में उत्त-मता है इस का भी अल्प दिशा दर्शन किया है, आशा है कि स्वाध्याय शील विद्वान और खोज करके सत्यासत्य का निर्णय करेंगे ॥

*श्री० स्वामी दयानन्द जी के भाष्य का पूर्ण समीक्षण करना इस निबन्ध का उद्देश नहीं श्री० सायणाचार्य के भाष्य का निरीक्षण करने के पश्चात् स्वामी भाष्य का अल्प दिग्द-र्शन करना पडा, इसलिये श्री० स्वामी जी के भाष्य के प्रमाण इस निबन्ध में नहीं दिये, प्रचलित सब वेद भाष्यों की तुलना करके किस का भाष्य किस प्रकार का है इस का स्वतन्त्र और विस्तृत विवेचना करके एक स्वतन्त्र ग्रन्थ में लिख रहा हूं, जिसमें हरएक भाष्य का यथार्थ स्वरूप विस्तार पूर्वक दिखाया जायगा उसी प्रसंगशः श्री० स्वामी दयानन्द सरस्वती के भाष्य का स्वरूप जिस प्रकार से बताया जायगा, उ यहां केवल उल्लेख मात्र है ॥